२७८ कलश। १६२ गाथा।

आत्मा ज्ञानं भवति न हि वा दर्शनं चैव तद्वत्,
ताभ्यां युक्तः स्वपरविषयं वेत्ति पश्यत्यवश्यम्।
सञ्ज्ञा-भेदा-दघ-कुल-हरे चात्मनि ज्ञान-दृष्ट्योः,
भेदो जातो न खलु परमार्थेन वह्न्युष्णवत्सः।।२७८।।

यह अधिकार अन्तिम अधिकार है।

श्लोकार्थ :- आत्मा (सर्वथा) ज्ञान नहीं है,... यह वस्तु तो नहीं। दृष्टि जिसे करनी है, उसे आत्मा ज्ञान ही है - ऐसा नहीं है। राग, शरीर, वाणी, कर्म, वे तो इसमें है ही नहीं। परन्तु इसमें ज्ञान है, वह भी अकेला ज्ञान ही नहीं है। आत्मा अकेला ज्ञान नहीं है। एक ही ज्ञानगुण ही नहीं है। आहाहा! **उसी प्रकार (सर्वथा) दर्शन भी नहीं ही है;...** इसी तरह दर्शन नाम का गुण जो आत्मा में है, वह सर्वथा दर्शन आत्मा है - ऐसा नहीं है। आहाहा! ज्ञान और दर्शन अभिन्न है। आत्मा में एकरूप है। ज्ञान भिन्न और दर्शन भिन्न, इसका अर्थ (यह कि) जानने में भिन्न कहने में आता है। ज्ञान सर्व को जाने और दर्शन सर्व को देखे, ऐसा कहते हैं। परन्तु ऐसा है नहीं। वह तो सर्व को जाने और सर्व को देखे, वह ज्ञान और दर्शन आत्मा है। आहाहा! करने का हित हो तो यहाँ है, कहते हैं। कषाय घटाना, वह कोई भी मूल चीज़ नहीं है। अन्तर में ज्ञान और दर्शन अभेद है। अभेद है, ऐसा निर्णय करना चाहिए। आहाहा! किसी चीज़ के साथ ज्ञान को सम्बन्ध नहीं है। जाने, तो भी सम्बन्ध नहीं है। दर्शन देखे, तो भी किसी के साथ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

वह उभययुक्त (ज्ञानदर्शनयुक्त) आत्मा... देखनेवाला और जाननेवाला दोनों गुणवाला आत्मा **स्व-पर विषय को अवश्य जानता है...** दोनों गुण स्व-पर विषय को जानते और देखते हैं। दर्शन भी स्व को देखता है, पर को देखता है। ज्ञान भी स्व को जानता है, पर को जानता है। आहाहा! इसमें करना क्या? क्रिया क्या करना? आज यह लेख आया है कि अनुभूति पहले नहीं, पहले कषाय घटाओ। बड़ा लेख आया है। कोई बिरधीचन्द है। उसके लेख आते हैं। परन्तु कषाय घटे कहाँ? कषाय पर दृष्टि रखकर

कषाय घटेगी ? जहाँ ज्ञान और दर्शन स्वभाव से भरपूर भगवान है, उसकी अन्तर्दृष्टि और अनुभव करे तो कषाय भिन्न पड़ जाए। भले कषाय सर्वथा घटे नहीं। सर्वथा तो केवल (ज्ञान) होवे, तब होता है, परन्तु भिन्न पड़ जाती है। आहाहा!

मुमुक्षु : भेदज्ञान होवे तो भिन्न पड़ जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो गुण हैं, वे सब अभेद हैं। दर्शन कहा (तो वह) एक को देखने का कोई कहे, ज्ञान एक को जानने का कहे, ऐसा नहीं है। दोनों गुण जानने-देखनेवाले हैं। दर्शन भी जानने-देखनेवाला, ज्ञान भी जानने-देखनेवाला। ऐसी बातें! यह वस्तु ऐसी है। जानन-देखनस्वरूप चैतन्यस्वरूप ही ऐसा है। उसमें कोई कर्म, शरीर, वाणी-बाणी कुछ है नहीं। आहाहा! पहले उस चीज़ की दृष्टि करना। पहले भले अनुमान से यह जाननेवाला है, वह आत्मा देखनेवाला है, वह आत्मा, परन्तु फिर दोनों का भेद छोड़कर ज्ञान और आनन्द का धरनेवाला आत्मा है, उस आत्मा का अनुभव करना। आहाहा! ऐसी बात है।

उभययुक्त (ज्ञानदर्शनयुक्त) आत्मा स्व-पर विषय को अवश्य जानता है और देखता है। अघसमूह के (पापसमूह के) नाशक आत्मा में... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा का जहाँ स्वीकार होता है, दर्शन-ज्ञान का धारक, उसका जहाँ स्वीकार होता है, वहाँ कषाय का नाश हो जाता है। अघसमूह का नाश होता है। है न ? ऐसा लिया। वह ऐसा लेता है कि कषाय घटाओ, पहले अनुभूति नहीं। यहाँ तो अनुभव होने पर कषाय नाश होती ही है, करनी नहीं पड़ती। कहाँ बड़ा अन्तर है, यह लोगों को (खबर नहीं पड़ती)। इसमें बड़ा अन्तर है। कषाय पहले घटाओ और फिर अनुभव होना, इस (बात में बड़ा अन्तर है)। यहाँ तो जो ज्ञान और दर्शन धारक आत्मा है, उसका अनुभव करने पर कषाय का नाश होता है। आया न ?

(ज्ञानदर्शनयुक्त) आत्मा स्व-पर विषय को अवश्य जानता है और देखता है। अघसमूह के (पापसमूह के) नाशक आत्मा में... पाप और पुण्य का नाश करनेवाला आत्मा **ज्ञानदर्शन में संज्ञा भेद से भेद उत्पन्न होता है...** ज्ञान का नाम ज्ञान, दर्शन का नाम दर्शन, आत्मा का नाम आत्मा, ऐसे नामभेद से भेद हो, परन्तु स्वरूपभेद नहीं है। आहाहा! **संज्ञा भेद से भेद उत्पन्न होता है...** संज्ञा गुण एक है, द्रव्य अनन्त गुण का स्वामी है; ज्ञान

का नाम ज्ञान, आत्मा का नाम आत्म (-ऐसी) दोनों की संज्ञा भिन्न हुई। नाम भिन्न है, इसी प्रकार संख्या भिन्न है। ज्ञानगुण एक है और आत्मा अनन्त गुण का स्वामी है। संख्या से भी भेद है। ओहोहो! **लक्षण...** ज्ञान और दर्शन के लक्षण भिन्न हैं, आत्मा का लक्षण भिन्न है। यह द्रव्य का लक्षण है और यह गुण का लक्षण है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात ली है।

(और प्रयोजन की अपेक्षा से उनमें उपरोक्तानुसार भेद है),... ज्ञान-दर्शन में भी भेद है और ज्ञान, दर्शन, आत्मा में भी नाम और प्रयोजन अपेक्षा से भेद है, परन्तु वस्तु-अपेक्षा से कोई भिन्न (वस्तु) नहीं है। प्रदेश भिन्न नहीं है, भाव भिन्न नहीं कि अत्यन्त एकभाव अन्यत्र रहे और एक भाव अन्यत्र रहता है - ऐसा नहीं है। असंख्य प्रदेश में सब गुण रहते हैं। आहाहा! वहाँ दृष्टि करने से आत्मा की पहिचान होती है। आत्मा की पहिचान होने पर आत्मा का अनुभव होता है। अनुभव होता है तो आत्मा का आनन्द आता है और उस आनन्द की वृद्धि करने से केवलज्ञान होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। लोगों ने क्रियाकाण्ड का मार्ग चला दिया है। व्यवहार करते (-करते) होगा। परन्तु व्यवहार उसमें है नहीं न! उसमें होवे, उससे हो। राग और द्वेष उसमें है नहीं तो उनसे कैसे होगा? उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द है तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द से होता है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द से आत्मा का अनुभव होता है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं।

अनन्त काल हुआ। आहाहा! अनन्त चौबीसी, अनन्त पुद्गलपरावर्तन, तीर्थंकर की उपस्थिति में अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये। भगवान महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ कभी तीर्थंकर का विरह नहीं है। वहाँ भी अनन्त बार उत्पन्न हुआ। अनन्त बार समवसरण में गया, अनन्त बार दिव्यध्वनि सुनी, परन्तु कुछ शल्य बाकी रह गयी। कुछ ऐसा हो और वैसा हो और ऐसा हो। परन्तु पूर्णानन्द का नाथ अखण्डानन्दस्वरूप की दृष्टि से ही सम्यग्दर्शन होता है, यह बात बैठी नहीं। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। फिर एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य को कोई लाभ हो, यह कहाँ रहा? क्या कहा, समझ में आया? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श भी नहीं करता। ओहोहो! स्पर्श भी नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में प्रवेश नहीं करता, स्पर्श नहीं करता, प्रवेश नहीं करता, छूता नहीं तो करे क्या?

यहाँ तो अकेली आत्मा की बात ली है, बस। वह दूसरी बात छोड़ दो। आत्मा में

भी ज्ञान-दर्शन आदि नामभेद हैं। वह नामभेद भले हो, वस्तुभेद नहीं है। नामभेद भले हो, वस्तुभेद नहीं है। बाहर की बात तो कहीं रह गयी। दया, दान, राग और अमुक, अमुक। बहुत कठिन काम, भाई!

चौरासी के अवतार... आहाहा! अनन्त बार घानी में पिला, अनन्त बार कुचला गया जीवित ऐसे। आहाहा! यह अभी सड़क पर दिखते हैं न। बड़े कुत्ते पड़े होते हैं ऐसे। धक्का लगा तो मर गये हुए पड़े होते हैं। ट्रक चले। उसके ऊपर चले पूरा। रात्रि के अन्धेरे में खबर न रहे। आहाहा! अरे! ऐसा अनन्त बार हुआ है। वह संयोग का दुःख नहीं है। जो जाति है, उसे जानता नहीं और जिसमें नहीं है, उस पर लक्ष्य किया करता है, वह दुःखी है। समझ में आया? दुःख की व्याख्या ही अलग है। यह संयोग जो सिर काटे, वह दुःख नहीं है। आहाहा! दुःख तो इस स्वभाव की दृष्टि छोड़कर - अपने स्वभाव की दृष्टि छोड़कर पर की दृष्टि में रुकना, वह दुःख है। ऐसी व्याख्या है।

अरे! काम किये हैं। आहाहा! आठ-आठ वर्ष के राजकुमारों ने काम किये हैं। वे राज छोड़कर, मुनि होकर केवल (ज्ञान) को प्राप्त हुए हैं और करोड़ पूर्व के आयुष्यवाले राजा तथा अरबोंपति भी मर गये ऐसे के ऐसे नरक में गये। आत्मा का किये बिना नरक में चले गये। आहाहा! मेरी सत्ता कहाँ रहेगी? और मेरी सत्ता है क्या? आहाहा! कहते हैं कि गुणभेद का नाम हो, परन्तु गुण और गुणी में भेद नहीं है। आहाहा! आहाहा!

कहा न? **परमार्थ से अग्नि और उष्णता की भाँति उनमें (-आत्मा में और ज्ञानदर्शन में) वास्तव में भेद नहीं है...** क्या कहा? अग्नि और उष्णता में भेद नहीं है। नामभेद है। अग्नि का नाम अग्नि और उष्णता का नाम, उष्णता। ऐसे नामभेद होने पर भी वस्तुभेद नहीं है। आहाहा! इसी तरह भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द - ऐसे नामभेद से भेद है। आत्मा का नाम आत्मा, आनन्द का नाम आनन्द, ऐसे एक-दूसरे से भिन्न नाम होने पर भी वस्तु में भिन्नता नहीं है। आहाहा! आनन्द, ज्ञान और दर्शन अन्दर एकसाथ पड़े हैं। भरपूर.. आहाहा! एक-एक गुण समुद्र की भाँति पड़े हैं। ऐसे अनन्त गुण हैं। समुद्र कहो, सागर कहो, दरिया कहो। आहाहा! जिसके स्वभाव की गहनता, ऐसे गुण के भेद भले हो, परन्तु आत्मा में नामभेद भले हो, परन्तु वस्तुभेद नहीं है। आहाहा!

जिसे आत्मा का करना है, उसे आत्मा पर नजर करनी है; गुणभेद पर भी नहीं।

आहाहा! कठिन काम। कठिन काम है, इसलिए दूसरा रास्ता निकाला है न, कोई कहे कि इस क्रिया से होगा, कोई कहे कषाय मन्द से होगा, कोई कहे - गुरु की कृपा से हो जाएगा। आहाहा! कोई कहे-बहुत सहन करते हैं, परीषह बहुत सहन करते हैं तो हो जाएगा। ऐसे अनेक उल्टे रास्ते निकाले हैं। आहाहा! एकलड़ो... आहाहा! उस स्तुति में आया नहीं? भाई ने नहीं गाया था उस दिन? 'प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा। प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा। पर की आश कहाँ करे प्रीतम, पर की आश कहाँ करे प्रीतम, कई बातें तू अधूरा?' आहाहा! तू किस बात में, किस भाव से अधूरा है? आहाहा! 'प्रभु मेरे सब बातें पूरा।' आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि नामभेद से (भेद) भले पड़ा। ज्ञान पूर्ण, दर्शन पूर्ण, आनन्द पूर्ण, नामभेद पड़ा परन्तु आत्मा में अन्दर नाम भिन्न, वस्तु भिन्न नहीं है। आहाहा! जैसे अग्नि और उष्णता नामभेद पड़ा, परन्तु उष्णता अग्नि में से निकल जाए; उष्णता में से अग्नि निकल जाए - ऐसा कभी नहीं होता। इसी प्रकार भगवान आत्मा यह आनन्द, वह आत्मा; ज्ञान, वह आत्मा; दर्शन, वह आत्मा। वह भी आनन्द और ज्ञान निकल जाए और आत्मा रहे; आत्मा निकल जाए और ज्ञान-दर्शन रहे - ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! ऐसा चैतन्य चक्रवर्ती... आहाहा! चक्रवर्ती ने तो छह खण्ड साधे। यह चैतन्य चक्रवर्ती लोकालोक को जानता है। आहाहा! इस जानने में पर के ऊपर उपयोग दे - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! स्व के उपयोग में सब ज्ञात हो जाता है। ऐसी ताकत भगवान आत्मा की (है)। हर देह में विराजता है। प्रभु तो अन्दर शक्ति सम्पन्न विराजता है। आहाहा! बाहर की अपेक्षा को छोड़ता नहीं। मानो भगवान की भक्ति करने से कल्याण होगा। भगवान का स्मरण करके हो जाएगा। आहाहा!

अभी यह चलता है न, क्या कहलाता है? बाहुबलीजी। बाहुबलीजी को यहाँ हजार वर्ष होते हैं। बड़ा लेख है। दस लाख लोग एकत्रित होनेवाले हैं, ऐसा लिखते हैं। भले होओ चाहे जितने। दस लाख। अब उस जंगल में सब रहने का, खाने का, पीने का सब प्रवृत्ति करना, वह कहीं धर्म है? आहाहा! आज आया है। दस लाख लोग। पहले आया था लाख लोग। एक लाख लोग गये थे। दिगम्बर मूल चार-पाँच लाख लोग। आवे, दूसरे आवे, देखने आवे। उसमें क्या है? आहाहा!

अन्तर भगवान विराजमान है। उसकी महिमा के समक्ष यह सब क्रिया कुछ गिनती में नहीं है। लाखों, करोड़ों रुपये खर्च करे, दस लाख को संभाले... आहाहा! उन्हें रहने के लिए स्थान बनावे, भोजन बनावे, इससे कहीं कल्याण हो जाए (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! स्व चीज़ के आश्रय बिना पर के आश्रय में कभी कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। आहाहा! वह भी गुणभेद होने पर भी वस्तु तो अग्नि और उष्णता एक है। इसी प्रकार आत्मा और ज्ञान-दर्शन एक है। ज्ञान-दर्शन नाम पड़े और आत्मा नाम पड़ा, इससे संज्ञाभेद से जो भेद पड़ा, प्रयोजनभेद से भेद पड़ा (परन्तु) अन्दर वस्तु एक है। आहाहा!

यह रजकण के रजकण यह शरीर, और अन्दर राग का रजकण, इन दोनों से अन्दर प्रभु अत्यन्त भिन्न है। ज्ञान और दर्शन से नामभेद से भिन्न है। इसमें तो नामभेद और भावभेद से भिन्न है। आहाहा! राग का, दया का, भक्ति का (भाव), बड़ा करोड़ों रुपये खर्च करके दस लाख को जिमाना और उसमें से कल्याण हो जाए (ऐसा है नहीं)। आहाहा!

इस **अग्नि और उष्णता की भाँति उनमें (-आत्मा में और ज्ञानदर्शन में) वास्तव में भेद नहीं है (-अभेदता है)।** आहाहा! ऐसा कहकर कहने का क्या आशय है? - कि पर के प्रति तो लक्ष्य छोड़, राग से तो लक्ष्य छोड़ और गुणभेद से भी लक्ष्य छोड़। आहाहा! वहाँ प्रभु पूर्ण विराजमान है। है एक, परन्तु अनन्त गुण का पिण्ड रखकर बैठा है। उसकी नजर में उस निधान को नजर में ले। आहाहा! करने का तो प्रभु! यह है। बाकी सब व्यवहार की बातें बहुत अवे। पूजा और भक्ति और... आहाहा!

यह बिरधीचन्द है, वह ऐसा कहता है कि प्रतिष्ठा करते हैं, यह पंच कल्याणक, वह विरोध है। ऐसा कुछ है नहीं। उसने और यह निकाला कि आत्मा की अनुभूति पहले हो, ऐसा नहीं। ये भ्रम में पड़े हैं (कि) कषाय को घटाने की बात पहली है। हम लेख... यहाँ तो कहते हैं, प्रभु चैतन्यमूर्ति अन्दर में जाने पर, स्थिर होने पर कषाय का नाश करता है, वह इसे लागू नहीं पड़ता। आहाहा! क्योंकि जो नास्ति है, वह अस्ति में लागू नहीं पड़ती। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसे कषाय का नाश, यह भी लागू नहीं पड़ता, कहते हैं। यह आया है न, भाई! प्रारम्भिक गाथाओं में। समयसार की ३४ गाथा में। राग का नाश, वह भी एक नाममात्र है। आहाहा! उसके बदले कषाय का नाश करे तो ऐसा कि आत्मा नया हो। आहाहा! अब यह है कोई गृहस्थ।

यहाँ तो अस्ति है, वह है, उसमें अनन्त गुण है और ऐसे गुणभेद होने पर भी भेद नहीं है। ऐसी चीज़ का अनुभव करना, उस चीज़ का आदर-सत्कार-स्वीकार करना, इसका नाम धर्म है। आहाहा! परन्तु पहला मार्ग कुछ होगा या नहीं? मार्ग अर्थात् जानने के लिए आवे (कि) इसमें गुण क्या है? कैसे है? कितने है? परन्तु यह जाना, इसलिए अनुभव होवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! तीन लोक का नाथ, जिसकी कीमत की बात क्या करनी? इसकी कीमत करने जाए तो इसकी कीमत हो जाए। आहाहा! उस चीज़ पर किसी भी दूसरी चीज़ के कारण लाभ हो, भक्ति करने से हो, और यह करने से हो, बड़ा महोत्सव करने से हो, गजरथ करने से हो, रथ-शोभायात्रा निकालने से हो, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! बाकी बाहर के सब व्यर्थ है। यहाँ तो अन्दर में ज्ञानस्वरूपी भगवान, यह ज्ञान (मैं) हूँ - ऐसा विकल्प भी उसे नुकसानदायक है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार से साधन कहा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन कहा, वह तो हुआ, तब उसका आरोप दिया। व्यवहार तो अनन्त बार किया। साधन होवे तो अनन्त बार किया।

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।
पे निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥

है न छहढाला में? 'मुनिव्रत धार...' उसकी आचरण की क्रिया अनन्त बार की। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पे निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' यह साधन वहाँ कहा होवे तो इससे हो जाना चाहिए। अनन्त बार किया तो भी हुआ नहीं। कठिन बात है, प्रभु! दुःख लगे, पूर्व का मानते हो, और साधु ने मनवाया हो। दुःख लगे, बापू! क्या हो? प्रभु! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! यह भगवन्त है, परमात्मा है, पूर्णानन्द के नाथ को समझने के लिये कोई भी अपेक्षा नहीं होती। आहाहा! अपेक्षा होवे तो वह पराधीन हो जाता है। आहाहा!

यहाँ तो कहा नहीं? उष्ण और अग्नि दो भिन्न नहीं है। इसी तरह गुण और गुणी भले नामभेद पड़े, परन्तु वे भिन्न नहीं है। अभेद करके वहाँ दृष्टि कर। आहाहा! एक तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। प्रभु! यह बात कैसे गले उतरे? गुणभेद है, वह तो अभेद है, परन्तु एक द्रव्य, एक परमाणु, एक आत्मा, दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करते।

अब यह बात कैसे बैठे ? कहो, सोभागमलजी ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। आहाहा ! गजब बात ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। स्पर्श करे तो अन्दर प्रवेश हो जाए, स्वयं का अभाव हो जाए। आहाहा ! यह बात भगवान के अलावा, वीतराग त्रिलोकनाथ, वे भी दिगम्बर के तीर्थंकर... आहाहा ! उनके अतिरिक्त किसी ने कहा नहीं। बात भी कहीं सुनी नहीं। वीतराग मुनि तीर्थंकरदेव... कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं समयसार की तीसरी गाथा में कहते हैं। एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। यह गजब बात ! शक्कर की डली इतनी... शक्कर.. शक्कर.. गांगड़ा को क्या कहते हैं ? डली। शक्कर की डली। तो भी उसमें एक-एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करते। आहाहा ! यह कैसे बैठे ? ऐसी बात !

मुमुक्षु : अगमनिगम की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अगमनिगम की बात है, प्रभु ! आहाहा ! प्रभु ! तेरी बड़ी बात है, बापू ! आहाहा ! शीघ्र गम्य में न आवे, ऐसी वस्तु है।

एक अपेक्षा से वस्तु सत् और सरल है। आहाहा ! एक रजकण दूसरे रजकण को स्पर्श नहीं करता, भाई ! यह कौन सुने ? किसने सुना और किसने कहा ? ये साधु सब कहते हैं इसका ऐसा करो, इसका ऐसा करो। परन्तु यहाँ कहते हैं कि एक रजकण दूसरे रजकण को स्पर्श नहीं करता। आत्मा एक रजकण को स्पर्श नहीं करता। अरेरे ! प्रभु ! अब इसे एक-दूसरे के काम कराना, वह मिथ्या मान्यता है। वे कोई इकट्ठे नहीं होते। आहाहा ! एक ठीक से धारवाली छुरी, कहते हैं कि एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। उसमें परमाणु-परमाणु भिन्न काम करते हैं। गजब बात, प्रभु ! यह बात वीतराग के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। आहाहा ! यह धारदार... वह क्या कहलाता है ? भूल गये। छुरी लो, छुरी-छुरी चाकू। आहाहा ! उस मूल पर अधिक जोर जाए, तब वस्तु याद आती नहीं। आहाहा ! छुरी और चाकू के एक-एक रजकण दूसरे रजकण को स्पर्शते नहीं हैं। आहाहा ! यह बात कौन करे ? प्रभु ! आहाहा ! और एक रजकण उसकी क्रमसर पर्याय से पर्याय होती है, उल्टी-सीधी नहीं होती और किसी से नहीं होती। किसी से तो नहीं होती, परन्तु उल्टी-सीधी नहीं होती है। आहाहा ! ऐसी वीतराग की बात ! तीन लोक के नाथ का पुकार है। यह दो सिद्धान्त पकड़े तो इसे सब बात ख्याल में आ जाए। आहाहा ! एक-

दूसरे को स्पर्श नहीं करता और क्रमसर होता है। इसमें दूसरे के द्वारा नहीं होता। आहाहा! तीन लोक के नाथ से भी आत्मा में कुछ नहीं होता। आहाहा!

लेख आता है न, शास्त्र में लेख आता है। वह सब व्यवहार का कथन है। ऐसे कथन बहुत आते हैं। व्यवहार है न, ऐसा विकल्प उठत है न! प्रभु के प्रति प्रमोद आता है, गुरु के प्रति प्रमोद आता है, उपकार (आता है)। वास्तव में तो कुछ है नहीं, परन्तु उस छद्मस्थ की दशा में ऐसा विकल्प आवे, इसलिए व्यवहार है - ऐसा सिद्ध किया है। परन्तु व्यवहार से अन्दर प्राप्त होता है... आहाहा! ऐसा नहीं। इन जवानों ने तो ऐसा पहले सुना नहीं होगा। भक्ति करो, पूजा करो... एक परमाणु दूसरे को स्पर्श नहीं करता। यह अंगुली भगवान को स्पर्श नहीं करती। भगवान की प्रतिमा को अंगुली स्पर्श नहीं करती। चन्दन को यह अंगुली स्पर्श नहीं करती। चन्दन भगवान को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! गजब बात है। पूजा करे, वह तो यह क्रिया होती है। उसमें इसका विकल्प है, उतना शुभभाव है, बस। इससे आगे कुछ बात नहीं है। यह शुभभाव है और वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ अन्त में यह कहा कि गुणभेद भले नाम हो, वस्तुभेद नहीं है।

गाथा-१६३

अप्पा परप्पयासो तइया अप्पेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगयं दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।।१६३।।

आत्मा पर-प्रकाशस्तदात्मना दर्शनं भिन्नम्।
न भवति परद्रव्यगतं दर्शनमिति वर्णितं तस्मात्।।१६३।।

एकान्तेनात्मनः परप्रकाशकत्वनिरासोऽयम्। यथैकान्तेन ज्ञानस्य परप्रकाशकत्वं पुरा निराकृतं, इदानीमात्मा केवलं परप्रकाशश्चेत् तत्तथैव प्रत्यादिष्टं ह्न भावभाववतोरेकास्तित्व-निर्वृत्तत्वात्। पुरा किल ज्ञानस्य परप्रकाशकत्वे सति तद्दर्शनस्य भिन्नत्वं ज्ञातम्। अत्रात्मनः पर-प्रकाशकत्वे सति तेनैव दर्शनं भिन्नमित्यवसेयम्। अपि चात्मा न परद्रव्यगत इति चेत् तद्दर्शनमप्यभिन्न-मित्यवसेयम्। ततः खल्वात्मा स्वपरप्रकाशक इति यावत्। यथा कथञ्चित्स्वपरप्रकाशकत्वं ज्ञानस्य साधितं अस्यापि तथा, धर्मधर्मिणोरेकस्वरूपत्वात् पावकोष्णवदिति।

पर ही प्रकाशे जीव तो हो आत्म से दृग् भिन्न रे।
'परद्रव्यगत नहिं दर्श', वर्णित पूर्व तव मंतव्य रे॥१६३॥

अन्वयार्थः—[आत्मा परप्रकाशः] यदि आत्मा (केवल) परप्रकाशक हो [तदा] तो [आत्मना] आत्मा से [दर्शनं] दर्शन [भिन्नम्] भिन्न सिद्ध होगा, [दर्शनं परद्रव्यगतं न भवति इति वर्णितं तस्मात्] क्योंकि दर्शन परद्रव्यगत (परप्रकाशक) नहीं है ऐसा (पहले तेरा मंतव्य) वर्णन किया गया है।

टीका : यह, एकान्त से आत्मा को परप्रकाशकपना होने की बात का खण्डन है।

जिस प्रकार पहले (१६२वीं गाथा में) एकान्त से ज्ञान को परप्रकाशकपना खण्डित किया गया है, उसी प्रकार अब यदि 'आत्मा केवल परप्रकाशक है' ऐसा माना

जाए तो वह बात भी उसी प्रकार खण्डन प्राप्त करती है, क्योंकि *भाव और भाववान एक अस्तित्व से रचित होते हैं। पहले (१६२वीं गाथा में) ऐसा बतलाया था कि यदि ज्ञान (केवल) परप्रकाशक हो तो ज्ञान से दर्शन भिन्न सिद्ध होगा! यहाँ (इस गाथा में) ऐसा समझना कि यदि आत्मा (केवल) परप्रकाशक हो तो आत्मा से ही दर्शन भिन्न सिद्ध होगा! और यदि 'आत्मा परद्रव्यगत नहीं है (अर्थात् आत्मा केवल परप्रकाशक नहीं है, स्वप्रकाशक भी है)' ऐसा (अब) माना जाए तो आत्मा से दर्शन की (सम्यक् प्रकार से) अभिन्नता सिद्ध होगी ऐसा समझना। इसलिए वास्तव में आत्मा स्व-परप्रकाशक है। जिस प्रकार (१६२वीं गाथा में) ज्ञान का कथंचित् स्व-परप्रकाशकपना सिद्ध हुआ, उसी प्रकार आत्मा का भी समझना, क्योंकि अग्नि और उष्णता की भाँति धर्मी और धर्म का एक स्वरूप होता है।

गाथा - १६३ पर प्रवचन

१६३ (गाथा)

अप्पा परप्पयासो तइया अप्पेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगयं दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।।१६३।।

पर ही प्रकाशे जीव तो हो आत्म से दृग् भिन्न रे।
'परद्रव्यगत नहिं दर्श', वर्णित पूर्व तव मंतव्य रे॥१६३॥

टीका : यह, एकान्त से आत्मा को परप्रकाशकपना होने की बात का खण्डन है। एकान्त से आत्मा पर को ही जाने और दर्शन स्व को ही देखे, इस बात का खण्डन है। बाहर में तो यह बात आती नहीं। पूरे दिन यह करो, यह करो और यह करो। वस्तु क्या है और कैसे उसकी स्थिति-मर्यादा है? वह स्वयं अपनी मर्यादा में रहकर टिक रहा है। किसी को स्पर्श कर टिका है या किसी की सहायता से टिक रहा है (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! यह पुस्तक इसके आधार से रही है? - कि नहीं। कौन माने? पागल ही कहे। घोड़ी के आधार से पुस्तक नहीं रही है। क्यों? - कि एक-एक परमाणु में षट्कारक गुण भरे हैं। एक-एक परमाणु में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण (गुण है)।

* ज्ञान भाव है और आत्मा भाववान है।

एक-एक परमाणु में अधिकरण नाम का गुण है, तो वह स्वयं अपने आधार से है। आहाहा! दुनिया से पूरी लाईन अलग है। यह तो पूरे दिन ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो और बहुत अच्छा करके आये तो अभिनन्दन दो, कुछ पैसा दो। आहाहा! वह प्रसन्न हो जाए। मेरी महिमा हुई, मुझे इनने पहिचाना। आहाहा! प्रभु! तुझे पहिचाने तो तू पहिचान। दूसरा कौन पहिचाने? आहाहा!

यहाँ कहते हैं -

पर ही प्रकाशे जीव तो हो आत्म से दृग् भिन्न रे।
'परद्रव्यगत नहिं दर्श', वर्णित पूर्व तव मंतव्य रे॥१६३॥

यह, एकान्त से आत्मा को परप्रकाशकपना होने की बात का खण्डन है। एकान्त से आत्मा को परप्रकाशकपना (ही है)... एकान्त से ज्ञान पर को ही जानता है, स्व को नहीं जानता, यह झूठ बात है। आहाहा! अनेकान्त है, वह जाने, ऐसा कहा। ऐसा आया कि अनेकान्त से जाने। यह व्यवहार है। ज्ञान पर को जानता है, यह व्यवहार है। क्या हो? पदार्थ की, व्यवहार की कथनी ऐसी आती है। उस कथनी में से अकेला निश्चय छाँट लेना। भगवान का तो स्वरूप अकेला भिन्न है। आहाहा! वह यहाँ आगे उसे जाने, ऐसा कहे न? **एकान्त से आत्मा को परप्रकाशकपना होने की बात का खण्डन है।** तो अनेकान्त से तो आत्मा परप्रकाशक भी है न? एकान्त से परप्रकाशकपना नहीं है। इतना यहाँ सिद्ध करना है। दर्शन की अपेक्षा से ज्ञान अकेला पर को जानता है, ऐसा तू ले तो ऐसा नहीं है। इतना यहाँ सिद्ध करना है। यह ज्ञान जैसे पर को जानता है, वैसे स्व को भी जानता है, इतना सिद्ध करना है। इसका अर्थ वापस ऐसा नहीं है कि यह ज्ञान पर को जानता है, इसलिए वह भी निश्चय है। आहाहा! ज्ञान तो ज्ञान को ही जानता है। ज्ञान की उस समय की ताकत पर को जानने सम्बन्धी की ताकत स्वयं की स्वयं के कारण खिली हुई है। आहाहा! यहाँ एकान्त से आत्मा को परप्रकाशकपना होने का (खण्डन करते हैं)। आत्मा को लिया, हों! ज्ञान की बात नहीं ली।

जिस प्रकार पहले (१६२वीं गाथा में) एकान्त से ज्ञान को परप्रकाशकपना खण्डित किया गया है,... क्या कहा? पहले ज्ञान का एकान्त का परप्रकाशक खण्डन किया। अब यहाँ आत्मा का अकेला परप्रकाशन का खण्डन है। आहाहा! पहले में और

इसमें अन्तर क्या किया ? **एकान्त से ज्ञान को परप्रकाशकपना खण्डित किया गया है, उसी प्रकार अब यदि 'आत्मा केवल परप्रकाशक है' ऐसा माना जाए तो वह बात भी उसी प्रकार खण्डन प्राप्त करती है,...** तो यह बात भी इसी प्रकार खण्डन के प्राप्त होती है। ज्ञान पर को जानता है, ऐसे आत्मा अकेले पर को जाने (तो) जैसा ज्ञान में दोष उत्पन्न होता है, उस ज्ञान को आधार पर हुआ। उस ज्ञान को जानने पर जैसे तुम अकेला परप्रकाशक सिद्ध करो, तो आत्मा परप्रकाशक आत्मा पर के आधार से रह गया। आत्मा पर के आधार से रहा। आहाहा! जैसा ज्ञान में दोष बताया था, वैसा आत्मा में बताया। आहाहा! ऐसी बात! अब ऐसा उपदेश! यहाँ कहे कि व्रत पालना, दया पालना, मण्डली इकट्ठी करना, मण्डल को इकट्ठा करके काम करना...

यह आत्मा... जैसे ज्ञान का परप्रकाशकपना, एकान्त का खण्डन किया था, वैसे इस आत्मा का एकान्तपना पर को प्रकाशकपना खण्डन करते हैं। बात समझ में आती है ? दोनों में यह क्या अन्तर पड़ा ? कहा न ? **पहले (१६२वीं गाथा में) एकान्त से ज्ञान को परप्रकाशकपना खण्डित किया गया है, उसी प्रकार अब यदि 'आत्मा केवल परप्रकाशक है' ऐसा माना जाए तो वह बात भी उसी प्रकार खण्डन प्राप्त करती है, क्योंकि...** यहाँ कुछ अशुद्धि हुई है। **भाव और भाववान एक अस्तित्व से रचित होते हैं।** क्या कहते हैं ? कि आत्मा यदि अकेले परप्रकाशन में रहे तो उसका अस्तित्व ही वहाँ रहा। उसका अपना अस्तित्व भिन्न नहीं रहा। अरेरे! ऐसी बातें! क्या कहा ? – कि आत्मा यदि पर का प्रकाशक होवे तो जैसे ज्ञान परप्रकाशक कहा था तो ज्ञान पर को प्रकाशित करे तो पर के आधार से रह गया। उसे आत्मा का ज्ञान नहीं रहा। वैसे आत्मा अकेले परप्रकाशक कहो तो आत्मा, आत्मा के आधार से नहीं रहा। आत्मा पर के आधार से रह गया। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें! तुम्हारे हीरा-माणेक में यह (बात) नहीं आती थी कहीं ? यह भी हीरा-माणेक में थे न ? आहाहा! अलग-अलग बात है।

पहले ऐसा कहा कि ज्ञान यदि पर को ही प्रकाशित करे, स्व को प्रकाशित न करे तो ज्ञान का आधार आत्मा नहीं रहा, ज्ञान का आधार पर रहा। इसी तरह आत्मा यदि पर को ही प्रकाशित करे तो आत्मा को आत्मा का आधार नहीं रहा। आत्मा पर को प्रकाशित करे, इतना रह गया। स्व को प्रकाशित करे, ऐसा वहाँ रहा नहीं। आहाहा! ऐसी चर्चा ली है। सम्प्रदाय में विवाद था न ? श्वेताम्बर और दिगम्बर के बीच बहुत विवाद। अनेक

प्रकार के (विवाद हों), इसलिए स्पष्ट करने के लिए सब बात करनी चाहिए न!

पहले (१६२वीं गाथा में) ऐसा बतलाया था कि यदि ज्ञान (केवल) परप्रकाशक हो तो ज्ञान से दर्शन भिन्न सिद्ध होगा! ज्ञान केवल परप्रकाशक होवे, तो दर्शन परप्रकाशक है नहीं। दर्शन तो स्वप्रकाशक है, ऐसी तेरी दृष्टि है। ज्ञान, दर्शन से भिन्न सिद्ध हुआ। आहाहा! न्याय समझ में आता है? आहाहा! नित्य केवल परप्रकाशक, ऐसा। अकेला ही परप्रकाशक होवे तो ज्ञान से दर्शन भिन्न सिद्ध होगा। **यहाँ (इस गाथा में) ऐसा समझना कि यदि आत्मा (केवल) परप्रकाशक हो तो आत्मा से ही दर्शन भिन्न सिद्ध होगा!** आहाहा! क्योंकि दर्शन है, वह स्व को देखे और आत्मा तो पर को जाने। आत्मा और दर्शन दो भिन्न हुए। समझ में आया? आत्मा यदि पर को देखे, इतना कहो तो आत्मा दर्शन को देखे, यह तो नहीं। दर्शन को स्वयं देखे। दर्शन और आत्मा दो भिन्न हो गये। आहाहा! आचार्यों ने करुणा करके एक-एक बात को जगत को समझाया है। साधारण बात भी स्पष्ट करके समझायी है। आहाहा! वह तो विकल्प आया, उसके भी कर्ता कहाँ थे? रजकण से वहाँ रचना हो गयी। आहाहा! उसके भी कर्ता कहाँ थे? बन गया। आहाहा!

यदि 'आत्मा परद्रव्यगत नहीं है... परद्रव्यगत नहीं। परद्रव्य को जाने, अकेला - तू ऐसा कहे, तो द्रव्य जैसे परद्रव्यगत अकेला जाने और द्रव्य बिना का आत्मा रह गया। ऐसे आत्मा पर को जिस कारण से जाने तो स्वयं को जानने का रह गया, इसलिए स्वयं ही रहा नहीं। आहाहा! ऐसे न्याय दिये। बनिये को यह कहाँ धन्धा? वकील-बकील होवे तो कायदा (समझे)। बनिये को कहाँ कायदा है? हमारे भाई कहते थे। हीराचन्द मास्टर। हीराचन्द मास्टर नहीं थे? क्या कुछ कहते थे?

मुमुक्षु : पंतुजी

पूज्य गुरुदेवश्री : पंतु - पंतुजी। ये सब मास्टर पंतुजी है क्योंकि वह का वह सिखाते हैं। वकीलों को नये-नये केस आते हैं, नये-नये कानून, नये-नये... यह देश छोड़कर परदेश में चुकारा हुआ हो वह भी आधार चाहिए। इस व्यापारी को क्या, यह और पंतुजी - ऐसा कहा। पूरे दिन यह एक इसका यह जो कहना (हो, वह कहे)। वह का वह किया करे। नया कोई तर्क या कुछ है नहीं। पंतुजी कहते थे। हीराचन्द मास्टर विद्यालय के बड़े मास्टर थे। विद्यालय के मास्टर। रतिभाई के पिता। रतिभाई है न? मुम्बई है।

आत्मा परद्रव्यगत नहीं है... आहाहा! **(केवल) परप्रकाशक हो तो आत्मा से ही दर्शन भिन्न सिद्ध होगा!** केवल पर को देखे तो दर्शन स्व को देखे, तो आत्मा और दर्शन दो भिन्न हो गये। आहाहा! **और यदि 'आत्मा परद्रव्यगत नहीं है (अर्थात् आत्मा केवल परप्रकाशक नहीं है, स्वप्रकाशक भी है)' ऐसा (अब) माना जाए तो आत्मा से दर्शन की (सम्यक् प्रकार से) अभिन्नता सिद्ध होगी...** दर्शन स्व को देखे और आत्मा पर को, ऐसा रहा नहीं। पर को देखे, वह स्व को भी देखे। दर्शन स्व को देखे और आत्मा भी पर को देखे और स्व को भी देखे। अभिन्नता रही। आहाहा! है ?

ऐसा (अब) माना जाए तो आत्मा से दर्शन की (सम्यक् प्रकार से) अभिन्नता सिद्ध होगी ऐसा समझना। इसलिए वास्तव में आत्मा स्व-परप्रकाशक है। आत्मा अकेला परप्रकाशक है - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा निर्णय करने में समय दे नहीं। व्यर्थ के एक-दूसरे को विवाद उठाना। कहते हैं, आत्मा स्व-परप्रकाशक है। जैसे दर्शन स्व को और पर को दोनों को देखता है, वैसे ज्ञान भी स्व को-पर को दोनों को देखता है, तो दोनों गुणों का धारक आत्मा भी स्व-पर दोनों को देखता है। आहाहा!

जिस प्रकार (१६२वीं गाथा में) ज्ञान का कथंचित् स्व-परप्रकाशकपना सिद्ध हुआ... स्व-परप्रकाशक सिद्ध किया। **उसी प्रकार आत्मा का भी समझना,...** आत्मा भी उस प्रकार कथंचित् पर को भी जानता है, कथंचित् स्व को जानता है। सर्वथा पर को जाने और स्व को न जाने - ऐसा नहीं है। और स्व को जाने तथा पर को न जाने सर्वथा - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा उपदेश। यह सिद्धान्त है। गुण की ताकत, एक द्रव्य की ताकत है। तो गुण की ताकत एकरूप है तो द्रव्य की ताकत एकरूप कहने पर द्रव्य नहीं रहे। एकरूप अर्थात् ? परप्रकाशित है और ज्ञान स्व को न प्रकाशे तो ज्ञान का द्रव्य भी रहे नहीं। आहाहा! इसी तरह वास्तव में दर्शन स्व को ही देखे और पर को न देखे तो स्व-पर दर्शन रहा ही नहीं। ज्ञान परप्रकाशक और दर्शन स्वप्रकाशक, यह दो बात रही नहीं। दोनों स्व-परप्रकाशक हैं और आत्मा भी स्व-परप्रकाशक है। आहाहा!

क्योंकि अग्नि और उष्णता की भाँति धर्मी और धर्म का... धर्मी अर्थात् अग्नि; धर्म अर्थात् उष्णता। **एक स्वरूप होता है।** ऐसे गुण और गुणी। जब गुण में भिन्नता नहीं। दर्शन-ज्ञान, वे भी स्व-परप्रकाशक है, यह भी स्व-परप्रकाशक है। दोनों में भिन्नता है नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)